चुर्गी के दफ्तर में आग लगा दी
) शाहजहाँ दरवाजा — लालकिला
दक्षिण भारत अलग - थलग रहा
34वीं नेटिव इन्फैंट्री का जवान मंगल पांडे — सार्जेन्ट मेजर पर गोली
) नाना साहब — बाजीराव द्वितीय के दत्तक — पूना से निर्वासित करना
) हजरत महल के बेटे, बिरजीस कदर — लखनऊ
) करौली में रूटलरबंड — स्मिथ बहादुर
) मद्रास अछूता रहा
) धार्मिक विश्वास सबसे पहले 1824 में उभरा
) सीताराम — गंगा जाट
) मुजफ्फरनगर - सहारनपुर
) दिल्ली की सरकार — सैनाशाही

(1) अफगान — 1838-42
(2) पंजाब — 1845-49
(3) क्रीमिया — 1854-56

अध्याय : 6

1857 का विद्रोह

सन् 1857 ई. में उत्तरी और मध्य भारत में एक शक्तिशाली जनविद्रोह उठ खड़ा हुआ और उसने ब्रिटिश शासन की जड़ें तक हिलाकर रख दीं। इसका आरंभ तो कंपनी की सेना के भारतीय सिपाहियों से हुआ, लेकिन जल्द ही एक व्यापक क्षेत्र के लोग भी इसमें शामिल हो गए। लाखों-लाख किसान, दस्तकार तथा सिपाही एक साल से अधिक समय तक बहादुरी से लड़ते रहे और अपनी मिसाली वीरता और बलिदानों से उन्होंने भारतीय जनता के इतिहास में एक नया शानदार अध्याय जोड़ा।

सामान्य कारण

1857 का विद्रोह सिपाहयों के असंतोष का परिणाम मात्र नहीं था। वास्तव में यह औपनिवेशिक शासन के चरित्र, उसकी नीतियों, उसके कारण कंपनी के शासन के प्रति जनता के संचित असंतोष का और विदेशी शासन के प्रति उनकी घृणा का परिणाम था। एक शताब्दी से अधिक समय तक अंग्रेज इस देश पर धीरे-धीरे अपना अधिकार बढ़ाते जा रहे थे, और इस काल में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में विदेशी शासन के प्रति जन-असंतोष तथा घृणा में वृद्धि होती रही। यही वह असंतोष था जो आखिर एक जनविद्रोह के रूप में भड़क उठा।

जन-असंतोष का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण कारण अंग्रेजों द्वारा देश का आर्थिक शोषण तथा देश के परंपरागत आर्थिक ढांचे का विनाश था। इन दोनों बातों ने बहुत बड़ी संख्या में किसानों, दस्तकारों तथा हस्त-शिल्पियों को, और साथ ही बड़ी संख्या में परंपरागत जमींदारों तथा मुखिया लोगों को निर्धनता के मुंह में झोंक दिया। हमने आरंभिक ब्रिटिश शासन के विनाशकारी आर्थिक प्रभाव का एक अन्य अध्याय में वर्णन किया है। अंग्रेजों की जमीन और राजस्व संबंधी नीतियां तथा कानून और प्रशासन की व्यवस्था इस असंतोष के अन्य सामान्य कारण रहे। खासकर जमीन की बहुत अधिक लगान के कारण जमीन का मालिकाना अधिकार बहुत सारे किसानों के हाथ से निकलकर व्यापारियों तथा सूदखोरों के हाथों में चला गया और वे कर्ज के भारी बोझ तले दबकर रह गए। ये नए जमींदार उन परंपराओं से अपरिचित थे जो पुराने जमींदारों को किसानों से जोड़कर रखती थीं, और इसलिए उन्होंने लगान को बेपनाह बढ़ाकर किसानों को तबाह कर दिया। जो किसान लगान अदा नहीं कर सके, उनसे जमीनें छीन ली गईं। किसानों की इस तबाही का नतीजा उन 12 बड़े तथा अनेक छोटे अकालों के रूप में सामने आया जो 1770 और 1857 के बीच में फूटे। इसी राह अनेक जमींदार भी भूराजस्व की मांग बढ़ाने के कारण परेशान हुए और उन्हें खतरा पैदा हो गया कि उनकी जमींदारी की जमीनें तथा अधिकार जब्त हो जाएंगे तथा गांव में उनकी स्थिति घट जाएगी। जब अधिकारियों, व्यापारियों तथा सूदखोरों जैसे शुद्ध रूप से बाहरी लोगों ने उनकी जगह ले ली तब अपनी स्थिति में गिरावट पर उनका असंतोष और बढ़ गया। इसके अलावा निचले स्तरों पर प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार ने साधारण जनता को बुरी तरह प्रभावित किया। पुलिस, छोटे अधिकारी तथा निचली अदालतें भ्रष्टाचार के मामले में बहुत बदनाम रहे। विद्रोह के कारणों की चर्चा करते हुए 1859 में एक ब्रिटिश अधिकारी, विलियम एडवर्ड ने लिखा है कि पुलिस को "जनता कोढ़-समान समझती थी" और पुलिस का दमन और लूट-खसोट हमारी सरकार के प्रति जनता के असंतोष का एक प्रमुख कारण था। छोटे अधिकारी रैयत तथा जमींदारों को सताकर अपना घर भरने का कोई अवसर नहीं चूकते थे। न्याय की पेचीदा प्रणाली का लाभ उठाकर धनी लोग गरीबों का दमन करते रहे। लगान, भू-

1) पोलिगार — दक्षिण भारत के वे जमींदार जो अधिकांशतः दस्तें रखते थे।
2) कोल — गुजरात (3) पेनिमन एडवर्ड :- पुलिस को "जनता कोढ़-समान समझती थी"

Scanned with CamScanner

(1) बहादुरशाह व जीनतमहल
(2) हुमायूं के मकबरे में शरण ——— बहादुरशाह
(3) सन्यासी विद्रोह ——— बंगाल ——— 1763 – 1800
(4) चुआर विद्रोह ——— बंगाल व बिहार – 1766 ——— पाँच जिलों में

राजस्व या कर्ज पर चढ़ने वाले सूद का बकाया वसूल करने के लिए किसानों को कोड़े से पीटना, कष्ट देना या जेल भेज देना । आम बातें थीं । अपनी बढ़ती गरीबी के कारण लोग हताश हो गए, तथा अपनी स्थिति में सुधार की आशा में आम विद्रोह में शामिल हो गए ।

समाज के मध्य तथा उच्च वर्ग, खासकर उत्तर भारत में, प्रशासन के अच्छी आय वाले ऊंचे पदों में शामिल नहीं किए जाते थे । इसका उन पर बुरा असर पड़ा । एक के बाद एक देशी रजवाड़ों के नष्ट होने का नतीजा यह हुआ कि जो भारतीय इन रजवाड़ों के प्रशासन और अदालतों में ऊंचे पदों पर थे, वे जीविका के साधन खो बैठे । अंग्रेजों का अधिकार जमने के कारण जो लोग सांस्कृतिक गतिविधियों के जरिए जीविका कमाते थे, वे भी बरबाद हो गए । भारतीय शासक कला और साहित्य के संरक्षक थे और विद्वानों, धर्मगुरूओं तथा फकीरों आदि की सहायता करते रहते । जब इन शासकों के अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी ने छीन लिए तो यह संरक्षण भी एकाएक समाप्त हो गया और जो लोग इस पर निर्भर थे, वे गरीबी के चंगुल में जा फंसे । धर्मोपदेशकों, पंडितों और मौलवियों ने, जो यह महसूस कर रहे थे कि उनका पूरा भविष्य खतरे में है, विदेशी शासन के प्रति घृणा पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

ब्रिटिश सरकार की अलोकप्रियता का एक और प्रमुख कारण उसका विदेशी होना भी था । अंग्रेज भारत में लगातार परदेशी ही बने रहे । उनके और भारतीय लोगों के बीच कोई संबंध या संपर्क नहीं रहा । पहले के विदेशी शासकों की तरह अंग्रेजों ने उच्च वर्गों के भारतीयों से भी सामाजिक मेल-जोल नहीं बढ़ाया । उल्टे, वे प्रजातीय श्रेष्ठता के नशे में चूर रहे तथा भारतीयों के साथ अपमानजनक और धृष्टतापूर्ण बर्ताव करते रहे । जैसा कि सर सैयद अहमद खान ने बाद में लिखा है : "उच्चतम श्रेणियों के देशी लोग तक भी बिना अंदरूनी डर के तथा बिना कांपे हुए कभी अधिकारियों के सामने उपस्थित नहीं हुए ।" सबसे बड़ी बात यह है कि अंग्रेज भारत में बसने, इसे अपना घर बनाने नहीं आए थे । उनका प्रमुख उद्देश्य धन कमाना तथा उस धन को लेकर ब्रिटेन लौटना होता था । भारत की जनता अपने नए शासकों के इस मूल विदेशी चरित्र को अच्छी तरह पहचानती थी । उन्होंने कभी भी अंग्रेजों को अपना शुभचिंतक नहीं माना और उनके एक-एक क्रियाकलाप को शंका की दृष्टि से देखते रहे । इस तरह उनके अंदर एक धुंधली-सी ब्रिटिश-विरोधी भावना पहले से मौजूद थी जो 1857 के विद्रोह से पहले भी अनेक अंग्रेज-विरोधी जनविद्रोहों में अभिव्यक्त होती रही ।

जनता के बीच बढ़ते असंतोष के इस काल में कुछ ऐसी घटनाएं भी हुईं जिनसे अंग्रेज सेनाओं की अपराजेयता का भ्रम टूट गया और लोगों में यह विश्वास पनपने लगा कि ब्रिटिश शासन के दिन अब बहुत थोड़े रह गए हैं । पहले अफगान युद्ध (1838–42), पंजाब के युद्धों (1845–49) तथा क्रीमियाई युद्ध (1854–56) में अंग्रेज सेनाओं की बुरी तरह पराजय हुई । 1855–56 में बिहार और बंगाल के संथाल कबीलों के लोग कुल्हाड़े तथा तीर-धनुष लेकर विद्रोह पर उतर आए और अपने क्षेत्र से कुछ समय के लिए ब्रिटिश शासन का सफाया करके उन्होंने एक जनविद्रोह की क्षमताओं को स्पष्ट कर दिया । हालांकि इन युद्धों में जीत आखिरकार अंग्रेजों की ही हुई और उन्होंने संथाल विद्रोह को भी कुचल डाला, फिर भी प्रमुख मुकाबलों में हुए नुकसानों से स्पष्ट हो गया कि एक एशियाई सेना भी डटकर लड़े तो अंग्रेज सेना को हरा सकती है । वास्तव में, अंग्रेजों की शक्ति को कम समझकर भारतीयों ने इस समय एक बड़ी राजनीतिक भूल की । इस भूल की एक बड़ी कीमत 1857 के विद्रोहियों को चुकानी पड़ी । परंतु साथ ही इस कारण के ऐतिहासिक महत्व को नहीं भूलना चाहिए । जनता केवल इसलिए विद्रोह नहीं करती कि वह अपने शासकों को उखाड़ फेंकना चाहती है; इसके साथ ही उसमें यह भरोसा भी होना चाहिए कि यह काम वह कामयाबी के साथ कर सकती है ।

1856 में लार्ड डलहौजी ने अवध को ब्रिटिश शासन में मिला लिया । पूरे भारत में तथा खास तौर पर अवध में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई । विशेष रूप से, इसके कारण अवध में और कंपनी की सेना में विद्रोह का वातावरण बन गया । डलहौजी के इस काम से कंपनी के सिपाही नाराज हो गए; इन सिपाहियों में 75,000 अवध के थे । अखिल भारतीय भावना के अभाव में इन सिपाहियों ने बाकी भारत को जीतने में अंग्रेजों की सहायता की थी । लेकिन उनके अंदर क्षेत्रीय और स्थानीय निष्ठा थी और उन्हें यह बात बुरी लगी कि उनका अपना प्रांत

(5) वेल्लुर की क्रांति ——— 1824 पेन्शन (7) 75,000 अवध के सिपाही
(6) सतारा 41, शाहकारी 44

Scanned with CamScanner

(1) सम्राट की पदवी छीन ली — कैनिंग
(2) डलहौजी — 1849 — दिल्ली के बाहर कुतुबमीनार के पास एक छोटे निवास स्थान में रहना होगा।
(3) कैनिंग — 1856 — मुगल सम्राट की पदवी छीन ली जाएगी

विदेशी अधिकार में आ गया था । इसके अलावा, अवध के अधिग्रहण के कारण सिपाहियों की आय पर भी बुरा असर पड़ा । अब अवध में उनके परिवारों के पास जो जमीनें थीं उन पर उन्हें अधिक टैक्स देने पड रहे थे ।

नाना साहब

अवध के अधिग्रहण के लिए डलहौजी ने जो तर्क दिया था, वह यह था कि वह जनता को नवाब के कुप्रबंध से तथा तालुकदारों के दमन से मुक्ति दिलाना चाहता था । परंतु वास्तव में जनता को कोई राहत नहीं मिली । उल्टे, साधारण जनता को अब पहले से अधिक भू-राजस्व तथा खाने-पीने की वस्तुओं, मकानों, खोमचों तथा ठेलों, अफीम और न्याय पर अधिक टैक्स देने पड़ रहे थे । नवाब का प्रशासन तथा सेना भंग होने से हजारों कुलीन तथा भद्र लोग, अधिकारी तथा उनके साथ-साथ उनके अमले के लोग तथा सिपाही बेरोजगार हो गए । लगभग हर किसान के घर में कोई न कोई बेरोजगार हुआ । इसी तरह जो व्यापारी, दुकानदार तथा दस्तकार अवध के दरबार तथा कुलीनों की सेवा करते थे, उनकी भी जीविका चली गई । इसके अलावा, अधिकांश तालुकदारों तथा जमींदारों की जागीरें भी अंग्रेजों ने जब्त कर लीं । संपत्तिहीन बने इन तालुकदारों की संख्या लगभग 21,000 थी । अपनी खोई जागीरों और सामाजिक स्थिति को पुनः प्राप्त करने के लिए बेचैन ये लोग ब्रिटिश शासन के सबसे खतरनाक दुश्मन बन गए ।

डलहौजी द्वारा अवध तथा कई अन्य राज्यों के अधिग्रहण ने देशी रजवाड़ों के शासकों में खलबली मचा दी । अब उन्हें पता चला कि अंग्रेजों के प्रति उनके झुक-झुककर वफादारी जताने के बाद राज्य फैलाने की अंग्रेजों की भूख शांत नहीं हुई । इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि अंग्रेजों की राजनीतिक प्रतिष्ठा को बहुत बड़ा धक्का लगा । कारण कि भारतीय शासकों के प्रति अपने मौखिक या लिखित वादों तथा समझौतों को उन्होंने बार-बार तोड़ा था, उनका राज्य हड़पा था, या उनको अपना अधीन बनाकर उनके सरों पर अपने आदमी बिठा दिए थे । राज्य हड़पने या उन्हें अधीन बनाने की यह नीति नानासाहब, झांसी की रानी तथा बहादुरशाह जैसे अनेक शासकों को अंग्रेजों का कट्टर दुश्मन बनाने के लिए सीधे-सीधे जिम्मेदार थी । नानासाहब आखिरी पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे । अंग्रेज बाजीराव द्वितीय को जो पेंशन दे रहे थे, वह नानासाहब को देने से इनकार कर दिया तथा उनको अपनी पैतृक राजधानी पूना से बहुत दूर, कानपुर में रहने पर बाध्य किया । इसी तरह झांसी को हड़पने की अंग्रेजों की जिद ने स्वाभिमानी रानी लक्ष्मीबाई का गुस्सा भड़काया । रानी की इच्छा यह थी कि उनके स्वर्गीय पति के सिंहासन पर उनका दत्तक पुत्र बैठे । 1849 में डलहौजी ने मुगल वंश की प्रतिष्ठा पर यह घोषणा करके चोट की थी कि बहादुरशाह के उत्तराधिकारी को ऐतिहासिक लाल किला छोड़कर दिल्ली के बाहर कतबमीनार के पास एक बहुत छोटे निवास स्थान में रहना होगा । और 1856 में कैनिंग ने यह घोषणा की कि बहादुरशाह की मृत्यु के बाद मुगलों से सम्राट की पदवी छीन ली जाएगी और वे सिर्फ राजा ही कहे जाएंगे ।

ब्रिटिश शासन के विरोध में जनता के खड़े होने का एक प्रमुख कारण यह भयी था कि इस शासन के कारण धर्म खतरे में है । इस भय का

(4) नानासाहब — बाजीराव II

1) संथाल 55 — सिदु, कान्हू
2) रंपा 71 —
मुंडा 99

Scanned with CamScanner

(1) नील 59 — नादिया जिले के गोविंदपुर — 1859 ई., नील-विद्रोह
(2) हिंदू पेट्रियट — हरिश्चन्द्र
(3) नील दर्पण — दीनबंधु मित्र
(4) 1857 का विद्रोह
1850 में सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अनुसार धर्म बदलकर ईसाई बनने वालों को अपनी पैतृक संपत्ति में अधिकार मिल गया।

प्रमुख कारण उन ईसाई मिशनरियों की गतिविधियां थीं जो "हर जगह स्कूलों, अस्पतालों, जेलों और बाजारों— में देखे जाते थे"। ये मिशनरी लोगों को ईसाई बनाने के प्रयास करते तथा हिंदू धर्म और इस्लाम पर सार्वजनिक रूप से तीखा और भोंडा प्रहार करते थे। वे जनता की पुरानी और प्रिय परंपराओं और मान्यताओं की खुलकर हंसी उड़ाते और उनकी निंदा करते थे। साथ ही, उन्हें पुलिस का संरक्षण प्राप्त था। उन्होंने जब कुछ लोगों का सचमुच धर्म-परिवर्तन कराया तो जनता को अपने धर्म के सामने उपस्थित खतरे का जीता-जागता प्रमाण मिल गया। जनता को आशंका थी कि विदेशी सरकार इन मिशनरियों की गतिविधियों को संरक्षण देती है। सरकार के कुछ कामों तथा बड़े अधिकारियों की कुछ गतिविधियों से इस आशंका को और बल मिला। 1850 में सरकार ने एक कानून बनाया जिसके अनुसार धर्म बदलकर ईसाई बनने वालों को अपनी पैतृक संपत्ति में अधिकार मिल गया। इसके अलावा, सरकार अपने खर्च पर सेना में ईसाई उपदेशक या पादरी रखती थी। अनेक नागरिक और सैनिक अधिकारी मिशनरी प्रचार को प्रोत्साहन देना तथा सरकारी स्कूलों और जेलों तक में ईसाई धर्म की शिक्षा की व्यवस्था करना अपना धार्मिक कर्तव्य मानते थे।

अनेक लोगों की रूढ़िवादी धार्मिक और सामाजिक भावनाएं उन मानवतावादी उपायों के कारण भी भड़कीं जो सरकार ने भारतीय सुधारकों की सलाह पर किए। उनका मत था कि एक विदेशी ईसाई सरकार को उनके धर्म और उनकी परंपराओं में हस्तक्षेप करने का कोई हक नहीं था। सती-प्रथा का उन्मूलन, विधवा-पुनर्विवाह संबंधी कानून, तथा लड़कियों के लिए पश्चिमी शिक्षा की व्यवस्था इन लोगों को ऐसे ही अनधिकारी हस्तक्षेप की तरह लगे। पहले के भारतीय शासकों ने मंदिरों और मस्जिदों से जुड़ी जमीन को, उनके पुजारियों या सेवा-संस्थाओं को कर से मुक्त रखा था। अब इनसे कर वसूल करने की सरकारी नीति से भी लोगों की धार्मिक भावनाओं को चोट लगी। इसके अलावा, इन जमीनों पर निर्भर अनेक ब्राह्मण और मुस्लिम परिवार गुस्से से उबल उठे और यह प्रचार करने लगे कि अंग्रेज उनके धर्म को नष्ट करने पर तुले हुए हैं।

1857 का विद्रोह कंपनी के सिपाहियों के विद्रोह से आरंभ हुआ। इसलिए हमें यह देखना होगा कि ये सिपाही जिनहोंने अपनी निष्ठापूर्ण सेवा से कंपनी को भारत-विजय में समर्थ बनाया था और जिन्हें अच्छी प्रतिष्ठा तथा आर्थिक सुरक्षा प्राप्त थी, क्यों एकाएक विद्रोही हो उठे। यहां पहली बात ध्यान में रखने की यह है कि ये सिपाही कुछ भी हों, भारतीय समाज के अंग थे और इसलिए दूसरे भारतीयों पर जो कुछ गुजरती थी उसे ये भी कुछ हद तक महसूस करके दुखी होते थे। समाज के दूसरे वर्गों, खासकर किसानों की आशाएं, इच्छाएं और दुख-दर्द इन सिपाहियों के बीच भी प्रतिबिंबित होते थे। यह सिपाही दरअसल 'वर्दीधारी किसान' ही था। अगर ब्रिटिश शासन के विनाशकारी आर्थिक कृत्यों से उनके निकट संबंधी पीड़ित होते थे तो उस पीड़ा को ये सिपाही भी महसूस करते थे। वे भी इस सामान्य विश्वास से ग्रस्त थे कि अंग्रेज उनके धर्मों में दखलअंदाजी कर रहे थे और सभी भारतीयों को ईसाई बनाने पर आमादा थे। उनके अपने अनुभव भी इस विश्वास को बल देते थे। वे जानते थे कि सेना में राज्य के खर्च पर ईसाई धर्मोपदेशक मौजूद थे। इसके अलावा, कुछ ब्रिटिश अधिकारी भी धार्मिक जोश में आकर सिपाहियों के बीच ईसाई धार्मिक प्रचार किया करते थे। सिपाहियों की अपनी धार्मिक या जातिगत शिकायतें भी थीं। उन दिनों भारतीय लोग जाति के नियमों आदि का कड़ाई से पालन करते थे। सैनिक अधिकारियों की तरफ से सिपाहियों का जाति या पंथ के चिह्नों के उपयोग पर, दाढ़ी रखने या पगड़ी पहनने पर प्रतिबंध था। 1856 में एक कानून बना जिसके अनुसार हर नए भर्ती होने वाले सिपाही को आवश्यकता हो तो समुद्र पार जाकर भी सेवा करने की जमानत देनी पड़ती थी। इससे भी सिपाहियों की भावनाओं को चोट लगी, क्योंकि उस समय की हिंदू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार समुद्र-यात्रा पाप थी और इसके दंड में किसी को जाति-बाहर भी कर दिया जाता था।

सिपाहियों को अनेक दूसरी शिकायतें भी थीं। अधिकारियों तथा सिपाहियों के बीच एक बहुत बड़ी खाई पैदा हो गई थी, तथा ब्रिटिश अधिकारी सिपाहियों से अक्सर अपमान का व्यवहार करते थे। एक तत्कालीन ब्रिटिश प्रेक्षक ने लिखा है कि "अधिकारी और सिपाही परस्पर मित्र नहीं, बल्कि एक दूसरे के लिए अजनबी ही रहे है। सिपाही को एक हीन प्राणी माना जाता है। उसे डांटा-फटकारा जाता है। उसके साथ बुरा बर्ताव होता

(5) हम महारानी और सिर्फ महारानी की रैयत होना चाहते हैं।
(6) बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय के आ० ती० एक

है उसे 'नीग्रो' जैसा समझा जाता है । उसे 'सुअर' कहकर पुकारा जाता है । .... छोटे अधिकारी .... उसे एक हीन प्राणी मानकर व्यवहार करते हैं ।" अगर भारतीय सिपाही अपने अंग्रेज समकक्ष जितना श्रेष्ठ योद्धा हो तो भी उसे कम पैसा दिया जाता था और अंग्रेज सिपाही से भी बुरे ढंग से रखा या खिलाया-पिलाया जाता था । इसके अलावा, उसकी उन्नति की आशाएं भी नहीं के बराबर थीं । कोई भी भारतीय 60–70 रुपए मासिक पाने वाले सूबेदार से ऊपर नहीं उठ सकता था । वास्तव में, सिपाही का जीवन ही कठिनाइयों से भरा था । स्वाभाविक था कि सिपाही इस बनावटी तथा उन पर लादी गई हीनता से खुश नहीं थे । जैसा कि ब्रिटिश इतिहासकार टी. आर. होल्म्स ने लिखा है :

> अगर वह हैदर जैसी सैनिक चातुरी का परिचय दे तो भी वह जानता है कि वह एक मध्य स्तरीय अंग्रेज अधिकारी (Subaltern) जितना वेतन नहीं पा सकता, और लगभग 30 वर्ष तक निष्ठापूर्वक सेवा करने के बाद जो पद वह प्राप्त करेगा वह भी उसे इंग्लैंड से नए-नए आए किसी रंगरूट की हुक्मअदायगी से सुरक्षित नहीं कर सकेगा ।"

सिपाहियों के असंतोष का एक और भी तात्कालिक कारण, हाल में जारी वह आदेश था कि सिंध या पंजाब में तैनाती के समय उन्हें विदेश सेवा भत्ता (बट्टा) नहीं मिलेगा । इस आदेश के कारण सिपाहियों की बहुत अधिक संख्या के वेतन में बड़ी कटौती हुई । अवध अनेक सिपाहियों का घर था, उसके हड़पे जाने ने उनकी भावनाओं को आग की तरह भड़का दिया ।

वास्तव में, सिपाहियों के असंतोष के पीछे एक लंबा इतिहास रहा है । बंगाल में बहुत पहले, 1764 में ही एक सिपाही विद्रोह घटित हो चुका था । अधिकारियों ने 30 सिपाहियों को तोपों के मुंह पर बांध कर उड़ा दिया था और इस प्रकार विद्रोह को दबा दिया था । 1806 में वेल्लूर में सिपाहियों ने विद्रोह किया था, मगर भयानक हिंसा का सहारा लेकर इसे दबा दिया गया था और कई सौ सिपाही युद्ध में मारे गए थे । 1824 में बैरकपुर में सिपाहियों की 47वीं रेजीमेंट ने समुद्री रास्ते से बर्मा जाने से इनकार कर दिया था यह रेजीमेंट तोड़ दी गई थी, इसके निहत्थे सिपाहियों पर तोपखाने ने गोले बरसाए थे, और सिपाहियों के नेताओं को फांसी दे दी गई थी । 1844 में वेतन और बट्टा के सवाल पर सात बटालियनों ने विद्रोह किया । इसी तरह अफगान युद्ध से कुछ ही पहले अफगानिस्तान में तैनात सिपाही विद्रोह करने ही वाले थे । सेना में व्याप्त असंतोष को व्याप्त करने के लिए एक मुसलमान और एक हिंदू सूबेदार को गोली मार दी गई थी । सिपाहियों में असंतोष इस कदर व्यापक हो चुका था कि 1858 में बंगाल के लेफ्टिनेंट-गवर्नर, फ्रेडरिक हैलीडे, को कहना पड़ा था कि बंगाल की फौज "कमोबेश बागी और हमेशा विद्रोह के लिए तैयार थी और तय है कि कभी न कभी अगर संयोगवंश उत्तेजना तथा अवसर मिले तो वह विद्रोह कर बैठती ।"

इस तरह बड़ी तादाद में भारतीय जनता तथा कंपनी के सिपाहियों के बीच विदेशी शासन के प्रति व्यापक और तीखी नापसंदगी बल्कि घृणा भी मौजूद थी । आगे चलकर सैयद अहमद खान ने अपनी पुस्तक 'काजेज आफ दि इंडियन म्युटिनी' में इस भावना को इस प्रकार व्यक्त किया :

> "धीरे-धीरे यह सोच भारतीयों की आदत बन गई कि सभी कानून उन्हें नीचे गिराने और तबाह करने और उन्हें तथा उनके देशवासियों को उनके धर्म से वंचित करने की दृष्टि से बनाए गए थे . . . . अंत में एक समय वह आया जब सभी लोग अंग्रेज सरकार को एक धीमा जहर, रेत की रस्सी या आग की घातक लौ समझने लगे । वे यह मानने लगे कि अगर आज वे सरकार के चंगुल से बच भी निकलें तो कल तो वे फंसेंगे ही, और अगर कल भी बच निकले तो तीसरे दिन उनकी बरबादी अवश्यंभावी है . . . . लोग सरकार में परिवर्तन होते हुए देखना चाहते थे और ब्रिटिश शासन की जगह दूसरे शासन के आने के विचार से दिली खुशी महसूस करते थे ।"

इसी तरह, दिल्ली में विद्रोहियों द्वारा जारी एक घोषणा में कहा गया था:

> पहली बात यह कि हिंदुस्तान में जहां 200 रुपए मालगुजारी होनी चाहिए थी, वहां उन्होंने 300 रुपए वसूले हैं और जहां 400 रुपए होने

चाहिए थे वहां उन्होंने 500 रुपए खसोटे हैं, और अभी भी वे अपनी मांगें बढ़ाते जाने पर अड़े हुए हैं । दूसरे, उन्होंने चौकीदारी टैक्स को दोगुना, चार गुना और दस गुना बढ़ा दिया है, और जनता को तबाह करना चाहते हैं । तीसरे, सभी प्रतिष्ठित और विद्वान लोगों की रोजी मारी गई है तथा लाखों-लाख लोग जीवन की आवश्यकताओं से वंचित हैं । जब रोजी की तलाश में कोई एक जिले से दूसरे जिले में जाना चाहता है तो हर प्राणी पर सड़क की चुंगी के नाम पर छः पाई ली जाती है तथा उसे हर गाड़ी पीछे 4 से 8 आने तक देने पड़ते हैं । केवल वे ही लोग जो ये सब चुकाते हैं, सार्वजनिक सड़कों पर यात्रा करने की छूट पाते हैं । हम अत्याचारियों के दमन का कहां तक वर्णन करें । धीरे-धीरे स्थिति यहां तक आ गई कि यह सरकार हर व्यक्ति का धर्म नष्ट करने पर तुल चुकी है ।

1857 का विद्रोह ब्रिटिश नीतियों और साम्राज्यवादी शोषण के प्रति जन-असंतोष का उभार था । परंतु यह आकस्मिक घटना नहीं थी । लगभग एक शताब्दी तक पूरे भारत में ब्रिटिश आधिपत्य के विरुद्ध तीव्र जन-प्रतिरोध होते रहे थे । बंगाल और बिहार में जैसे ही ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ, सशस्त्र विद्रोह शुरू हो गए, और जैसे-जैसे यह नए क्षेत्रों को जीतता गया, वहां भी ये विद्रोह फूटते गए । देश के किसी न किसी भाग में सशस्त्र विरोध के बिना शायद ही कोई साल या एक बड़े विद्रोह के बिना शायद ही कोई दशक गुजरा हो । 1763 और 1856 के बीच 40 से अधिक बड़े विद्रोह और सैकड़ों छोटे विद्रोह हुए । इन विद्रोहों का नेतृत्व अकसर राजे, नवाब, जमींदार, भूस्वामी और पोलीगार करते थे, मगर लड़ने वाली फौजों में किसान, दस्तकार और पदच्युत भारतीय शासकों या जागीर और शस्त्रागार से वंचित कर दिए गए जमींदारों और पोलीगारों के भूतपूर्व सैनिक होते थे । ये लगभग निरंतर चलने वाले विद्रोह कुल मिला कर बहुत भयानक होते थे, मगर अपने प्रसार में ये पूरी तरह स्थानीय तथा एक-दूसरे से असंबद्ध होते थे । उनके प्रभाव भी स्थानीय ही होते थे ।

तात्कालिक कारण

1857 ई. तक विद्रोह के लिए बारूद जमा हो चुका था, केवल इसमें एक जलती तीली पड़ने की देर थी । चर्बी मिले कारतूसों की घटना ने यह चिनगारी भी बारुद को दिखा दी और सिपाहियों के विद्रोह पर उतर आने पर साधारण जनता भी उठ खड़ी हुई ।

नए एनफील्ड राइफल का उपयोग सबसे पहले सेना में ही आरंभ किया गया । इसके कारतूसों पर चर्बी सने कागज का खोल चढ़ा होता था और कारतूस को राइफल में भरने से पहले उसके सिरे को दांतों से काटना पड़ता था । कुछ उदाहरणों में इस खोल में गाय और सुअर की चर्बी का प्रयोग किया गया था । इससे हिंदू तथा मुसलमान सिपाही, दोनों भड़क उठे । उन्हें लगा कि चर्बीदार कारतूसों का प्रयोग उनके धर्म को भ्रष्ट कर देगा । इनमें से अनेकों का विश्वास था कि सरकार जान-बूझकर उनके धर्म को नष्ट करने के तथा उन्हें ईसाई बनाने के प्रयत्न कर रही है । बगावत का वक्त आन पहुंचा था ।

विद्रोह का आरंभ

1857 का विद्रोह स्वतः स्फूर्त और अनियोजित था या यह किसी सावधानीपूर्वक तथा गुप्त रूप से किए गए संगठन-कार्य का परिणाम था ? निश्चित रूप से इस सवाल का जवाब दे सकना कठिन है । 1857 के विद्रोह के इतिहास का एक अजीब पहलू यह है कि इसका अध्ययन लगभग पूरी तरह ब्रिटिश दस्तावेजों पर आधारित है । विद्रोही अपने पीछे कोई दस्तावेज नहीं छोड़ गए । चूंकि वे गैरकानूनी ढंग से काम कर रहे थे, इसलिए शायद वे कोई लिखित दस्तवेज नहीं रखते थे । फिर यह भी कि वे हरा दिए गए तथा कुचल दिए गए और घटनाओं के बारे में उनके विवरण उनके साथ ही नष्ट हो गए । अंतिम बात यह कि बाद में भी वर्षों तक अंग्रेज विद्रोह के बारे में किसी भी सहानुभूतिपूर्ण उल्लेख को दबाते रहे तथा जो भी विद्रोहियों का पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास करता उसके खिलाफ कड़ी कार्यवाही करते रहे ।

इतिहासकारों तथा लेखकों के एक वर्ग का दावा है कि यह विद्रोह एक व्यापक तथा सुसंगठित षड्यंत्र का परिणाम था । इसके सबूत में वे चपातियों तथा लाल कमल के फूलों के गांव-गांव पहुंचने की घटनाओं तथा घुमक्कड़ सन्यासियों, फकीरों तथा मदारियों के प्रचार का उल्लेख करते हैं । दूसरे लेखक इतने ही दावे के साथ इस बात से इनकार करते हैं कि विद्रोह के पीछे कोई सुनियोजित तैयारी थी । उनका कहना है कि विद्रोह से पहले या बाद

Scanned with CamScanner

मेरठ की बैरकें, यहीं से विद्रोह की शुरूआत हुई थी।

में भी रद्दी कागज का एक टुकड़ा तक ऐसा नहीं मिला जिससे सुसंगठित षड्यंत्र का संकेत मिलता हो। किसी गवाह तक ने इस तरह का कोई दावा कभी नहीं किया।

विद्रोह का आरंभ 10 मई, 1857 को दिल्ली से 36 मील दूर मेरठ में हुआ। फिर यह तेजी से बढ़ता हुआ पूरे उत्तर भारत में फैल गया। जल्द ही उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक एक विस्तृत भू-भाग इसकी चपेट में आ गया।

मेरठ में विद्रोह के भड़कने से पहले भी बैरकपुर में मंगल पांडे शहीद हो चुके थे। वे एक नौजवान सिपाही थे जिनको अकेले विद्रोह करने तथा अपने अधिकारियों पर हमला करने के कारण 29 मार्च, 1857 को फांसी दे दी गई थी। ये तथा ऐसी ही अनेक घटनाएं इस बात का संकेत थीं कि सिपाहियों में असंतोष तथा विद्रोही भाव पक रहे थे। फिर इसके बाद मेरठ में विस्फोट हुआ। 24 अप्रैल को तीसरी देशी घुड़सवार सेना के 90 लोगों ने चर्बीदार कारतूस लेने से इंकार कर दिया। उनमें से 85 को 9 मई को बरखास्त करके दस-दस साल की बामशक्कत सजाएं दी गईं और जंजीरों में जकड़ दिया गया। इससे मेरठ में तैनात भारतीय सिपाहियों में एक आम विद्रोह भड़क उठा। फिर अगले ही दिन, 10 मई को उन्होंने अपने कैदी साथियों को छुड़ा लिया, अपने अधिकारियों को मार डाला तथा विद्रोह का झंडा बुलंद कर लिया। फिर जैसे कि कोई चुंबक उनको खींच रहा हो, वे सूर्यास्त के बाद दिल्ली की ओर चल पड़े। मेरठ के सिपाही जब अगली सुबह दिल्ली में दिखाई पड़े तो वहां की पैदल सेना आकर उनके साथ मिल गई। उन्होंने अपने यूरोपीय अधिकारियों को मार डाला और शहर को घेर लिया। बागी सिपाहियों ने बूढ़े और शक्तिहीन बहादुरशाह जफर को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। दिल्ली जल्द ही इस महान विद्रोह का केंद्र बन गई तथा बहादुरशाह इसके महान प्रतीक बन गए। इस अंतिम मुगल बादशाह को जिस तरह स्वतः स्फूर्त ढंग से देश का नेता बना दिया गया, वह इस तथ्य का प्रमाण था कि मुगल खानदान के लंबे शासन ने इस खानदान को भारत की राजनीतिक एकता का प्रतीक बना दिया था। केवल इस एक कार्य के द्वारा सिपाहियों ने एक फौजी विद्रोह को

Scanned with CamScanner

बख्त खाँ ——— दिल्ली [बरेली]
नाना साहब ——— कानपुर
बेगम हजरत महल ——— लखनऊ [फिरोजशाह कुतुब]
कुंवर सिंह ——— बिहार
मौलवी अहमदुल्लाह ——— मद्रास के पास फैजाबाद

तात्या टोपे
अजीमुल्लाह

बहादुर शाह द्वितीय

एक क्रांतिकारी युद्ध में बदल दिया । यही कारण है कि पूरे देश के विद्रोही सिपाहियों के कदम अपने आप दिल्ली की ओर मुड़ गए, और विद्रोह में भाग लेने वाले सभी भारतीय राजाओं ने मुगल सम्राट के प्रति अपनी वफादारी घोषित करने में कतई देर नहीं लगाई । फिर सिपाहियों के कहने पर या संभवतः उनके दबाव में बहादुरशाह ने भारत के सभी राजाओं और सरदारों को पत्र लिखा और उनसे आग्रह किया कि ब्रिटिश साम्राज्य से लड़ने और उसको हटाने के लिए वे भारतीय राज्यों का एक महासंघ स्थापित करें ।

जल्द ही बंगाल की पूरी सेना विद्रोह में शामिल हो गई और यह तेजी से फैल गया । अवध, रूहेलखंड, दोआबा, बुंदेलखंड, मध्य भारत, बिहार का एक बड़ा भाग, और पूर्वी पंजाब इन सभी जगहों पर ब्रिटिश साम्राज्य चरमरा उठा । अनेक रजवाड़ों में शासक तो अंग्रेज गालिकों के प्रति वफादार बने रहे, मगर उनकी फौजों में विद्रोह भड़क उठा या भड़कने के करीब आ गया । इंदौर के अनेक फौजी विद्रोह करके सिपाहियों से आ मिले । इसी तरह ग्वालियर के 20,000 से अधिक फौजी तात्या टोपे और झांसी की रानी के साथ चले गए । राजस्थान तथा महाराष्ट्र के अनेक छोटे सरदार अपनी जनता का भरोसा पाकर विद्रोही बन गए; उनकी यह जनता अंग्रेजों की कट्टर दुश्मन थी । हैदराबाद तथा बंगाल में भी छिटपुट विद्रोह हुए ।

यह विद्रोह जितना अधिक व्यापक था उतनी ही इसमें गहराई भी थी । पूरे उत्तरी और मध्य भारत में सिपाहियों के विद्रोह ने नागरिक जनता को भी आम विद्रोह के लिए प्रेरित किया । सिपाहियों द्वारा ब्रिटिश सत्ता के समाप्त किए जाने के बाद साधारण जनता भी हथियार लेकर उठ खड़ी हुई और अक्सर बल्लमों, कुल्हाड़ों, तीर-धनुष, लाठियों और हंसियों, तथा देशी बंदूकों के साथ लड़ती रही । लेकिन अनेक जगहों पर सिपाहियों से भी पहले या जहां कोई फौज तैनात नहीं थी, वहां भी जनता ने विद्रोह का आरंभ किया । किसानों, दस्तकारों, दुकानदारों, दिहाड़ी वाले मजदूरों और जमींदारों की व्यापक भागीदारी ऐसी चीज थी जिसने विद्रोह को उसकी वास्तविक शक्ति दी तथा इसे जन-विद्रोह का चरित्र भी दिया, खासकर उन क्षेत्रों में जो आज उत्तर प्रदेश तथा बिहार में शामिल हैं । इस क्षेत्र में किसानों तथा जमींदारों ने सूदखोरों तथा अपनी जमीन से बेदखल करने वाले नए जमींदारों पर हमले करके अपनी तकलीफों को खुलकर जाहिर किया ।

विद्रोह का लाभ उठाकर उन्होंने सूदखोरों की

Scanned with CamScanner

खाता-बहियों की खाता बहियों तथा कर्जों के दस्तावेजों को नष्ट कर दिया । अन्होंने अंग्रेजों द्वारा स्थापित अदालतों, तहसील कार्यालयों, मालगुजारी के दस्तावेजों तथा थानों पर हमले किए । यह भी महत्वपूर्ण बात है कि अनेक लड़ाइयों में सामान्य जनता की संख्या सिपाहियों से कहीं बहुत ज्यादा थी । एक अनुमान के अनुसार अवध में अंग्रेजों से लड़ते हुए मरने वाले लगभग 1,50,000 लोगों में 1,00,000 से अधिक सामान्य नागरिक थे ।

यह भी ध्यान रहे कि जहां जनता विद्रोह में शामिल नहीं हुई, वहां भी लोगों ने विद्रोहियों के साथ बहुत सहानुभूति का व्यवहार किया । वे विद्रोहियों की हर जीत पर खुश होते रहे तथा अंग्रेजों के वफादार रहने वाले सैनिकों का सामाजिक बहिष्कार करते रहे । उन्होंने ब्रिटिश सेना के साथ सक्रिय शत्रुता का व्यवहार किया, उसे सहायता या सूचना देने से इनकार कर दिया, और उसे गलत सूचना देकर गुमराह तक किया । लंदन टाइम्स अखबार के संवाददाता के रूप में 1858–59

विद्रोही सैनिकों की एक टुकड़ी

में भारत का भ्रमण करने वाले डब्ल्यू. एच. रसल ने लिखा है :

> कोई भी मिसाल ऐसी नहीं कि किसी गोरे की गाड़ी पर दोस्ताना निगाह पड़ती हो . . . . उफ ! ये आंखों की भाषा ! शक की गुंजाइश कहां है ? गलत समझाने की गुंजाइश कहां है ? यही तो वह चीज है जिससे मैंने समझा कि हमारी जाति का अक्सर बहुत से लोगों को कोई डर नहीं होता और यह कि नफरत तो इससे सभी करते हैं ।

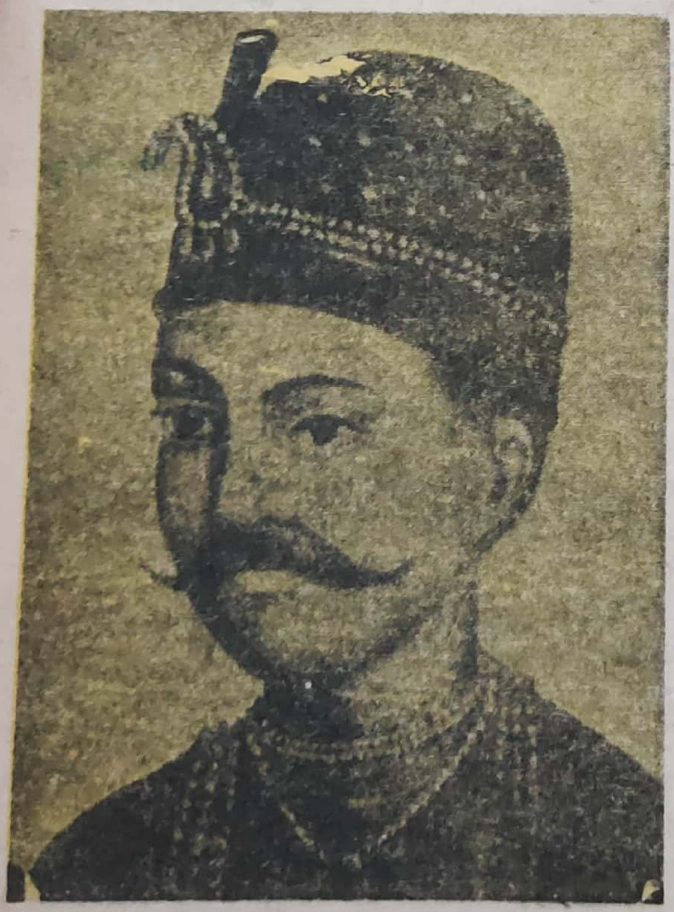

1857 के विद्रोह का जन-चरित्र उस समय भी स्पष्ट हुआ जब अंग्रेजों ने इसे कुचलने की कोशिश की । उन्होंने विद्रोही सिपाहियों को ही नहीं दबाया, बल्कि दिल्ली, अवध, पश्चिमोत्तर प्रांत, आगरा, मध्य भारत और पश्चिम बिहार की जनता के खिलाफ भी एक भरपूर और निर्मम लड़ाई उनको लड़नी पड़ी । पूरे के पूरे गांव जला दिए गए, तथा ग्रामीण और नगरीय जनता का कत्ले-आम किया गया । अंग्रेजों के एक-एक करके गांवों से लड़ना पड़ा तथा उत्तरी भारत के अनेक भागों को फिर से जीतना

Scanned with CamScanner

पड़ा । लोगों को बिना किसी मुकदमें के फांसी देना तथा फांसी के बाद सबके सामने पेड़ों से लटकाना पड़ा । इन सबसे पता चलता है कि इन क्षेत्रों में विद्रोह कितना फैल चुका था ।

1857 के विद्रोह की शक्ति बहुत कुछ हिंदू-मुस्लिम एकता में निहित थी । सैनिक तथा जनता हो या नेता, हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच पूरा-पूरा सहयोग देखा गया । सभी विद्रोहियों ने एक मुसलमान बहादुरशाह को अपना सम्राट स्वीकार कर लिया था । मेरठ के हिंदू सिपाहियों के मन में पहला विचार दिल्ली की ओर कूच करने का ही आया । हिंदू और मुसलमान विद्रोही और सिपाही एक दूसरे की भावनाओं का पूरा-पूरा सम्मान करते थे । उदाहरण के लिए, विद्रोह जहां भी सफल हुआ वहीं हिंदुओं की भावनाओं का आदर करते हुए फौरन ही गौ-हत्या बंद करने के आदेश जारी कर दिए गए । इसके अलावा, नेतृत्व में हर सतह पर हिंदुओं तथा मुसलमानों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त था । विद्रोह में हिंदू-मुस्लिम एकता की भूमिका का परोक्ष रूप से एक वरिष्ठ ब्रिटिश अधिकारी, एचिंसन ने स्वीकार किया है । बहुत कड़वे मन से वह लिखता है : "इस मामले में हम मुसलमानों को हिंदुओं से नहीं लड़ा सकते ।" वास्तव में, 1857 की घटनाओं से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मध्य काल में तथा 1858 से पहले भारत की जनता और राजनीति अपने मूल रूप में सांप्रदायिक नहीं थी ।

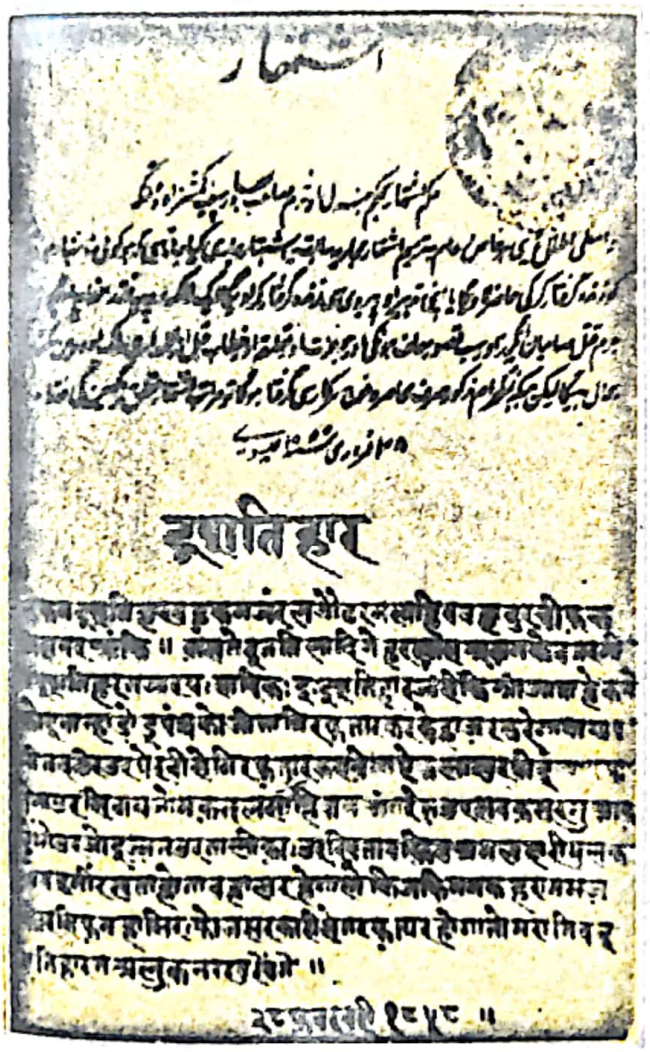

जनरल आट्रम द्वारा जारी किया गया पर्चा जिसमें इस बात का ऐलान किया गया है कि ढोंढू पंत (नाना साहब) को पकड़वाने वाले को एक लाख का पुरस्कार दिया जाएगा ।

(1) तात्या टोपे, अजीमुल्लाह — नाना साहब

1857 के विद्रोह के प्रमुख केंद्र दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, बरेली, झांसी तथा आरा (बिहार) थे । दिल्ली में प्रतीक रूप में, कहने को विद्रोह के नेता सम्राट बहादुरशाह थे, परंतु वास्तविक नियंत्रण एक सैनिक समिति के हाथों में था जिसके प्रमुख जनरल बख्त खान थे । इन्होंने ही बरेली के सैनिकों का नेतृत्व किया था तथा उनको दिल्ली ले आए थे । ब्रिटिश सेना में वे तोपखाने के एक मामूली सूबेदार थे । बख्त खान विद्रोह के प्रमुख केंद्र में साधारण तथा निम्न वर्गीय जनता के प्रतिनिधि थे । विद्रोह के नेतृत्व की जंजीर में सबसे कमजोर कड़ी शायद सम्राट बहादुरशाह ही थे । उनका कमजोर व्यक्तित्व, उनकी अधिक आयु और नेतृत्व के गुणों का अभाव—इनके कारण विद्रोह के प्रमुख केंद्र में ही राजनीतिक दुर्बलता आई तथा इससे विद्रोह को अकथनीय हानि पहुंची ।

कानपुर में विद्रोह के नेता नानासाहब थे जो अंतिम पेशवा, बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे । सिपाहियों की सहायता से अंग्रेजों को कानपुर से खदेड़कर नानासाहब ने स्वयं को पेशवा घोषित कर दिया । साथ ही साथ बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित करके उन्होंने अपने को उनका प्रतिनिधि घोषित किया । नानासाहब की ओर लड़ने का भार मुख्यतः उनके विश्वसनीय सेवक तात्या टोपे के सिपाहियों पर था। अपनी देशभक्ति, शौर्यमय युद्ध तथा कुशल छापामार कार्यवाहियों के कारण तात्या टोपे अमर हो चुके हैं । नानासाहब के एक और विश्वसनीय सेवक अजीमुल्लाह थे । वे राजनीतिक-प्रचार-कार्य के माहिर थे । दुर्भाग्य से, नानासाहब ने कानपुर में अंग्रेजों को सुरक्षित निकाल देने का

Scanned with CamScanner

(1) हम अपने हाथों अपनी आजाद शादी को कब नहीं खोएंगे—
(2) अंग्रेजों के वफादार महाराज सिंधिया — रानी लक्ष्मी बाई से लड़ने की कोशिश की
(3) सिंधिया — आगरा जाकर अंग्रेजों की रक्षा की —
(4) लक्ष्मी बाई — 17 जून, 1858

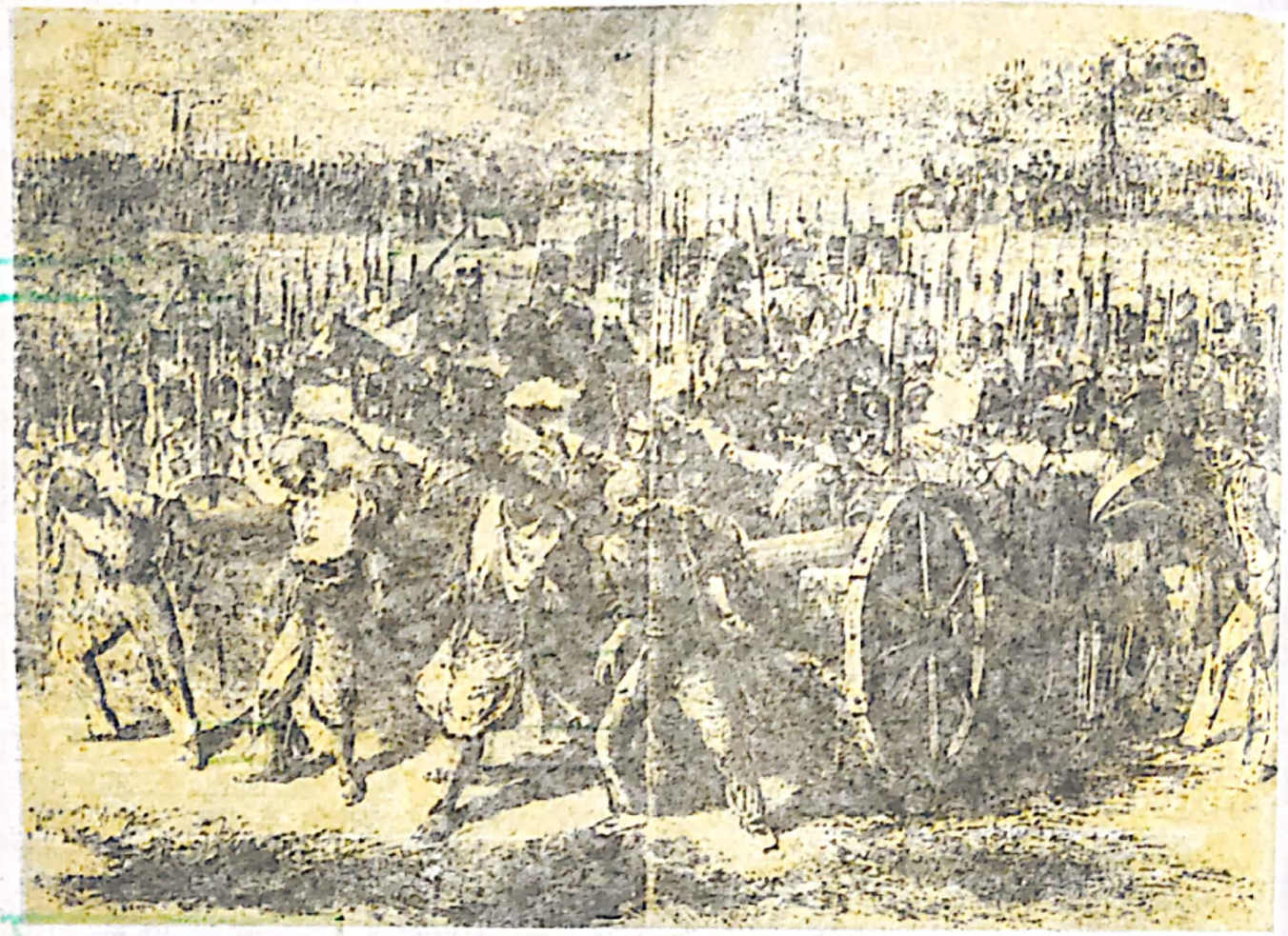

विद्रोहियों को तोप के मुंह से बांधा जा रहा है ताकि उन्हें उड़ाया जा सके

वादा करने के बावजूद उन्हें धोखे से मारकर अपनी बहादुरी पर कलंक का टीका लगा दिया ।

लखनऊ में विद्रोह का नेतृत्व अवध की महत्तनी बेगम हजरतमहल कर रही थीं । उन्होंने अपने नाबालिग बेटे बिरजीश कदर को अवध का नवाब घोषित कर दिया । लखनऊ के सिपाहियों तथा अवध के किसानों और जमींदारों की सहायता से बेगम ने अंग्रेजों के खिलाफ चौतरफा युद्ध छेड़ दिया । जब अंग्रेज शहर छोड़ने के लिए मजबूर हो गए तो उन्होंने रेजीडेंसी की इमारत में शरण ले ली । आखिर में रेजीडेंसी का घेरा कामयाब नहीं हुआ क्योंकि छोटी सी ब्रिटिश सेना उदाहरणीय धैर्य तथा बहादुरी से लड़ती रही ।

1857 के विद्रोह के महान नेताओं में से भारतीय इतिहास की महानतम वीरांगनाओं में से एक थीं—झांसी की युवा महारानी लक्ष्मीबाई । जब अंग्रेजों ने झांसी की गद्दी के लिए एक उत्तराधिकारी गोद लेने के रानी के अधिकार को नहीं माना, उनके राज्य का अपहरण कर लिया तथा उन्हें धमकी दी कि झांसी के सैनिकों को विद्रोह के लिए भड़काने के लिए उन्हें उत्तरदायी माना जाएगा, तब रानी विद्रोहियों से आ मिलीं । रानी कुछ समय तक अनिश्चय की स्थिति में रहीं । लेकिन जब उन्होंने विद्रोहियों का साथ देने का फैसला कर लिया तो बहुत बहादुरी के साथ उन्होंने अपने सैनिकों का नेतृत्व किया । तब से लेकर आज तक उनके शौर्य, साहस तथा सैनिक कुशलता की गाथाएं देशवासियों को प्रेरणा देती आ रही हैं । अंग्रेजों के साथ उनकी एक भयानक लड़ाई हुई जिसमें "स्त्रियां तक तोपें चलाते और गोला-बारूद बांटती देखी गईं ।" उसके बाद रानी को झांसी से बाहर भागना पड़ा । तब उन्होंने अपने अनुयायियों को शपथ दिलाई कि

(1) जगदीशपुर — कुंवर सिंह - आरा

लखनऊ रेजिडेंसी

"हम अपने हाथों अपनी आजाद शाही (स्वतंत्र राज्य) की कब्र नहीं खोदेंगे" तात्या टोपे तथा अपने अफगान रक्षकों की सहायता से उन्होंने ग्वालियर पर कब्जा कर लिया । अंग्रेजों के वफादार महाराज सिंधिया ने रानी से लड़ने की एक कोशिश की, मगर उनके अधिकांश सैनिक रानी से जा मिले । सिंधिया ने आगरा जाकर अंग्रेजों की शरण ली । यह बहादुर रानी सिपाही के वेश में, एक घोड़े पर सवार होकर लड़ते हुए 17 जून, 1858 को वीरगति को प्राप्त हुई। उनके साथ एक मुस्लिम लड़की भी शहीद हुई जो उनकी बचपन की साथी थी ।

बिहार में विद्रोह के प्रमुख नेता कुंवरसिंह थे जो आरा के पास जगदीशपुर के एक तबाह और असंतुष्ट जमींदार थे । लगभग 80 वर्ष के होते हुए भी वे विद्रोह के संभवतः सबसे प्रमुख सैनिक नेता तथा रणनीतिज्ञ थे । फैजाबाद के मौलवी अहमदुल्लाह विद्रोह के एक और प्रमुख नेता थे । वे मद्रास के रहने वाले थे और वहीं से उन्होंने सशस्त्र विद्रोह का प्रचार कार्य शुरु कर दिया था । जनवरी 1857 में वे उत्तर में फैजाबाद आ गए । यहां उन्होंने ब्रिटिश सैनिकों की उस कंपनी से एक भीषण लडाई लड़ी जो उनको राजद्रोह के प्रचार से रोकने के लिए भेजी गई थी । जब मई में आम बगावत भड़क उठी तो वे अवध में इसके एक मान्य नेता के रुप में उभरे ।

(1) अहमदुल्लाह — मद्रास

विद्रोह के सबसे महान वीर सिपाही ही थे । इनमें से अनेकों ने युद्धक्षेत्र में अद्भुत साहस का परिचय दिया। हजारों सैनिकों ने निःस्वार्थ भाव से अपने प्राणों का होम कर दिया । सबसे बड़ी बात यह है कि इन सैनिकों का दृढ़ निश्चय तथा बलिदान ही था जिसने अंग्रेजों को भारत से लगभग खदेड़ ही दिया था । इस देशभक्तिपूर्ण संघर्ष में उन्होंने अपने मन में गहरे बैठे धार्मिक पूर्वाग्रहों की भी कुर्बानी दे दी । उन्होंने विद्रोह तो किया था चर्बीदार कारतूसों के सवाल पर, मगर घृणित विदेशियों को बाहर भगाने की धुन में वे लड़ाइयों में जमकर इन्हीं चर्बीदार कारतूसों का प्रयोग करते रहे ।

विद्रोह की कमजोरियां और उसका दमन

1857 का विद्रोह बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ था और जनता का व्यापक समर्थन इसे प्राप्त था, फिर भी यह पूरे देश को या भारतीय समाज के सभी अंगों तथा वर्गों को अपनी लपेट में नहीं ले सका । यह दक्षिणी भारत तथा पूर्वी और पश्चिमी

Scanned with CamScanner

रानी लक्ष्मी बाई और तात्या टोपे

भारत के अधिकांश भागों में नही फैल सका और जींद के सिख शासक तथा पंजाब के दूसरे क्योंकि इन क्षेत्रों में पहले अनेकों विद्रोह हो चुके सिख सरदार, कश्मीर के महाराजा, नेपाल के राणा थे। भारतीय रजवाड़ों के अधिकांश शासक तथा बड़े तथा दूसरे अनेक सरदारों और अनेकों बड़े जमींदारों जमींदार पक्के स्वार्थी तथा अंग्रेजों की शक्ति से ने विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों की सक्रिय सहायता भयभीत थे और वे विद्रोह में शामिल नही हुए। की। वास्तव में भारतीय शासकों में एक प्रतिशत से इसके विपरीत ग्वालियर के सिंधिया, इंदौर के होल्कर, अधिक विद्रोह में शामिल नहीं हुए। गवर्नर-जनरल हैदराबाद के निजाम, जोधपुर के राजा तथा दूसरे कैनिंग ने बाद में टिप्पणी की, इन शासकों तथा राजपूत शासक, भोपाल के नवाब, पटियाला, नाभा सरदारों ने "तूफान के आगे बांध की तरह काम

किया; वर्ना यह तूफान एक ही लहर में हमें बहा ले जाता।" मद्रास, बंबई, बंगाल तथा पश्चिमी पंजाब में जनता विद्रोहियों में हमदर्दी रखती थी, फिर भी ये प्रांत अप्रभावित रहे। इसके अलावा, असंतुष्ट तथा बेदखल जमींदारों को छोड़कर उच्च तथा मध्य वर्गों के अधिकांश लोग विद्रोहियों के आलोचक थे। संपन्न वर्गों के अधिकांश लोग विद्रोहियों के प्रति ठंडे बने रहे या उनका सक्रिय विरोध किया। यहां तक कि विद्रोह में शामिल अवध के बहुत से तालुकदारों (बड़े जमींदारों) ने, अंग्रेजों से यह आश्वासन पाकर की उनकी जागीरें उन्हें वापस दे दी जाएंगी, विद्रोह से किनारा कर लिया। इससे एक लंबा खिंचता हुआ छापामार संघर्ष चला सकना अवध के किसानों और सिपाहियों के लिए बहुत कठिन हो गया।

ग्रामीण जनता के हमलों का खास निशाना सूदखोर थे। इसलिए वे स्वाभाविक तौर पर विद्रोह के शत्रु थे। लेकिन धीरे-धीरे व्यापारी भी इसके शत्रु बन गए। युद्ध का खर्च जुटाने के लिए विद्रोहियों को उन पर भारी कर लगाने पड़े थे या सेना को भोजन देने के लिए उनके अनाज-गोदामों पर कब्जा करना पड़ा था। व्यापारी प्रायः अपनी दौलत और माल छिपा देते थे तथा विद्रोहियों को मुफ्त में सामान देने से मना कर देते थे। बंगाल के जमींदार भी अंग्रेजों के वफादार बने रहे। आखिरकार वे अंग्रेजों की ही पैदावार थे। इसके अलावा, बिहार में जमींदारों के प्रति किसानों की शत्रुता ने बंगाल के जमींदारों को भी डरा दिया था। इसी तरह बंबई, कलकत्ता तथा मद्रास के बड़े व्यापारियों ने भी अंग्रेजों का साथ दिया। कारण कि उनका अधिकांश मुनाफा अंग्रेज व्यापारियों के साथ होने वाले विदेशी व्यापार तथा आर्थिक संबंधों से होता था।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने भी विद्रोह का साथ नहीं दिया। विद्रोही जिस प्रकार अंधविश्वासों का उपयोग करते या प्रगतिशील सामाजिक उपायों का विरोध करते थे, उससे ये भारतीय बिदककर दूर हो गए। जैसाकि हमने देखा है, शिक्षित भारतीय देश का पिछड़ापन समाप्त करना चाहते थे। उनके मन में यह गलत विश्वास भरा था कि अंग्रेज आधुनिकीकरण के ये काम पूरा करने में उनकी सहायता करेंगे, जबकि जमींदारों, पुराने शासकों और सरदारों, तथा दूसरे सामंती तत्वों के नेतृत्व में लड़ने वाले विद्रोही देश को पीछे ले जाएंगे। कुछ समय बाद ही शिक्षित भारतीयों ने अपने अनुभवों से जाना कि विदेशी शासन देश का आधुनिकीकरण करने में न सिर्फ असमर्थ साबित हुआ, बल्कि उसने उसे गरीब और पिछड़ा बनाए रखा। इस मामले में 1857 के क्रांतिकारी अधिक दूरदर्शी सिद्ध हुए। उन्हें विदेशी शासन की बुराइयों तथा उससे मुक्ति पाने की आवश्यकता की कहीं बेहतर और सहज समझ हासिल थी। दूसरी ओर, शिक्षित लोगों की तरह उन्होंने यह बात नहीं समझी कि देश विदेशियों के चंगुल में ठीक इसीलिए फंसा था कि वह सड़े-गले रिवाजों, परंपराओं तथा संस्थाओं से चिपका हुआ था। वे यह समझ सकने में असफल रहे कि देश की मुक्ति पुराने सामंती राजतंत्र की ओर पलटने में नहीं बल्कि आगे बढ़कर एक आधुनिक समाज, आधुनिक अर्थव्यवस्था, वैज्ञानिक शिक्षा तथा आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं को गले लगाने से ही संभव थी। कुछ भी हो, यह नहीं कहा जा सकता कि शिक्षित भारतीय राष्ट्रद्रोही या विदेशी शासन के भक्त थे। जैसा कि 1858 के बाद की घटनाओं ने दिखाया, जल्द ही ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक शक्तिशाली और आधुनिक आंदोलन का नेतृत्व उन्होंने संभाल लिया।

भारतीयों में एकता के अभाव के चाहे जो कारण रहे हों, यह विद्रोह के लिए घातक सिद्ध हुआ। लेकिन विद्रोहियों के लक्ष्य को धक्का पहुंचाने वाली यह अकेली कमजोरी नहीं थी। उनके पास आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य युद्ध सामग्री की भी कमी थी। अधिकांश तो भालों और तलवारों जैसे पुराने हथियारों से ही लड़ रहे थे। उनका संगठन भी ठीक नहीं था। सिपाही बहादुर तथा स्वार्थरहित तो थे मगर उनमें अनुशासन की कमी भी थी। कभी-कभी तो वे अनुशासित सेना के बजाए दंगाई भीड़ की तरह व्यवहार करते। विद्रोह इकाइयों के पास सैनिक कार्यवाही की साझी योजनाओं, अधिकार संपन्न प्रमुखों या केंद्रीकृत नेतृत्व का भी अभाव था। देश के विभिन्न भागों में हो रहे विद्रोहों के बीच कोई तालमेल नहीं था। विदेशी शासन के प्रति एक साझी घृणा को छोड़कर और कोई संबंध-सूत्र नेताओं के बीच नहीं था। किसी क्षेत्र विशेष से ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के बाद उन्हें पता भी नहीं होता था कि उसकी जगह किस प्रकार की राजनीतिक सत्ता या संस्थाएं स्थापित की जाएं। वे एक-दूसरे के प्रति शंकित

Scanned with CamScanner

(1) 20, सितंबर, 1857 को दिल्ली पर दोबारा कब्जा कर लिया
(2) बहादुरशाह जफर – रंगून – 1862

तथा ईर्ष्याग्रस्त थे और अक्सर आत्मघाती झगड़ों में उलझ पड़ते थे । इसी तरह किसान मालगुजारी के दस्तावेजों तथा सूदखोरों के बही-खातों को नष्ट करने तथा नए जमींदारों को खदेड़ चुकने के बाद समझ नहीं पाते थे कि आगे क्या करें, और इसलिए निष्क्रिय हो जाते थे ।

वास्तव में विद्रोह की कमजोरियां व्यक्तियों की कमियों से भी कहीं अधिक गहराई में निहित थीं । इस आंदोलन को भारत को गुलाम बनाने वाले उपनिवेशवाद की या आधुनिक विश्व की कोई खास समझ नहीं थी । इसके पास एक भविष्योन्मुख कार्यक्रम, सुसंगत विचारधारा, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य या भावी समाज और अर्थव्यवस्था के प्रति एक स्पष्ट दृष्टि का अभाव था । विद्रोह सत्ता पर अधिकार के बाद लागू किए जाने वाले किसी सामाजिक विकल्प से रहित था । इस तरह इस आंदोलन में तरह-तरह के तत्व शामिल थे जो केवल ब्रिटिश शासन के प्रति अपनी घृणा द्वारा ही जुड़े हुए थे । इनमें से हरेक की अपनी-अपनी शिकायतें थीं और स्वतंत्र भारत की राजनीति की अपनी-अपनी धारणाएं थीं । एक आधुनिक, प्रगतिशील कार्यक्रम के अभाव में प्रतिक्रियावादी राजा और जमींदार क्रांतिकारी आंदोलन का नेतृत्व हथियाने में सफल हो गए । लेकिन विद्रोह के सामंती चरित्र पर हमें बहुत जोर नहीं देना चाहिए । सिपाही तथा साधारण जनता धीरे-धीरे एक भिन्न प्रकार का नेतृत्व विकसित कर रहे थे । विद्रोह को सफल बनाने का प्रयास भी उन्हें नए प्रकार का संगठन तैयार करने को बाध्य कर रहा था । उदाहरण के लिए, दिल्ली में प्रशासकों की एक समिति बनाई गई थी जिसके दस सदस्यों में छः सिपाही तथा चार नागरिक थे । इसमें सभी निर्णय बहुमत द्वारा लिए जाते थे । यह समिति सभी सैनिक तथा प्रशासकीय निर्णय सम्राट के नाम पर करती थी । नई सांगठनिक संरचनाएं तैयार करने की इस तरह की कोशिशें विद्रोह के दूसरे केंद्रों में भी की गई । बेंजामिन डिज़राइली ने उस समय ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दी थी कि अगर समय रहते विद्रोह नहीं कुचला गया तो "रंगमंच पर भारतीय राजाओं के अलावा कुछ और पात्र भी दिखाई देंगे तथा उनसे भी उन्हें (अंग्रेजों को) जूझना पड़ेगा ।"

भारतीयों में एकता का यह अभाव भारतीय इतिहास के इस चरण में संभवतः अपरिहार्य था । भारत अभी आधुनिक राष्ट्रवाद से अपरिचित था । देशप्रेम का मतलब अपनी छोटी-सी बस्ती, क्षेत्र या अधिक से अधिक अपनी राजसत्ता के प्रति प्रेम था। सांझे अखिल भारतीय हितों का तथा इस चेतना का कि ये हित सभी भारतीयों को परस्पर जोड़ते हैं, अभी उदय नहीं हुआ था । वास्तव में 1857 के विद्रोह ने भारतीय जनता को एक साथ जोड़ने में तथा उनमें एक देश का वासी होने की चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

अंत में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद जिसके पास एक विकासमान पूंजीवादी अर्थव्यवस्था थी, जो दुनिया भर में शक्ति के शिखर पर बैठा था, तथा जिसे अधिकांश भारतीय शासकों तथा सरदारों का सहयोग प्राप्त था, सैनिक दृष्टि से विद्रोहियों से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ । ब्रिटिश सरकार ने देश में भयानक संख्या में सेना, धन तथा अस्त्र-शस्त्रों को झोंक दिया, हालांकि खुद अपने इस दमन के लिए भारतीयों को बाद में पूरी-पूरी कीमत चुकानी पड़ी । विद्रोह कुचल दिया गया । मात्र साहस एक ऐसे शक्तिशाली तथा दृढ़ निश्चय शत्रु के आगे नहीं ठहर सका जिसका हर कदम नियोजित था । विद्रोहियों को बहुत पहले ही एक भारी धक्का तब लगा जब अंग्रेजों ने एक लंबे तथा भयानक युद्ध के बाद 20 सितंबर, 1857 को दिल्ली पर दोबारा कब्जा कर लिया । बूढ़े सम्राट बहादुरशाह बंदी बना लिए गए। उनके राजकुमार पकड़कर वहीं मार डाले गए । सम्राट पर मुकद्दमा चला तथा उन्हें निर्वासित कर रंगून भेज दिया गया । वहीं अपनी किस्मत पर आंसू बहाते हुए कि उन्हें उनकी जन्मभूमि से बहुत दूर कर दिया गया था, वे 1862 में स्वर्गवासी हुए । इस तरह महान मुगल वंश आखिरकार पूरी तरह नष्ट हो गया ।

दिल्ली के पतन के साथ विद्रोह का केंद्र बिंदु नष्ट हो गया । विद्रोह के दूसरे नेता बहादुरी से यह असमान युद्ध लड़ते रहे, मगर अंग्रेजों ने उनके खिलाफ एक शक्तिशाली हमला केंद्रित कर दिया था । जान लारेंस, आउट्रम, हेवलाक, नील, कैंपबेल और ह्यूरोज कुछ ऐसे ब्रिटिश कमानदार थे जिन्होंने इस युद्ध में सैनिक ख्याति प्राप्त की । विद्रोह के सभी महान नेता एक के बाद एक खेत रहे । नानासाहब की कानपुर में हार हुई। अंत तक हार न मानकर तथा आत्मसमर्पण से इनकार करके वे 1859 के आरंभ में नेपाल की ओर कूच कर गए, और फिर उनका कोई पता नहीं चला । तात्या टोपे मुख्य भारत के जंगलों में जा छिपे और वहीं से एक

Scanned with CamScanner

भयानक और शानदार छापामार युद्ध चलाते रहे, जब तक कि अप्रैल 1859 में वे सोते समय एक जमींदार दोस्त की गद्दारी के कारण पकड़े नहीं गए । जल्दी-जल्दी उन पर मुकदमा चलाकर उन्हें 15 अप्रैल, 1859 को मौत की सजा दे दी गई । झांसी की रानी पहले ही, 17 जून, 1858 को युद्धभूमि में लड़ते हुए शहीद हो चुकी थीं । 1859 तक कुंवरसिंह, बख्त खान, बरेली के खान बहादुरखान, नानासाहब के भाई रावसाहब और मौलवी अहमदुल्लाह सभी स्वर्गवासी हो चुके थे जबकि अवध की बेगम हजरतमहल मजबूर होकर नेपाल में जा छिपी थीं ।

1859 के अंत तक भारत पर ब्रिटिश सत्ता पूरी तरह पुनर्स्थापित हो चुकी थी । परंतु विद्रोह व्यर्थ नहीं गया । यह हमारे इतिहास का एक शानदार पड़ाव है । यह पुराने ढंग के भारत को तथा उसके परंपरागत नेतृत्व को बचाने का एक हताशपूर्ण प्रयास तो था ही, परंतु यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए भारतीय जनता का पहला महान संघर्ष भी था । इसने एक आधुनिक राष्ट्रीय आंदोलन के विकास का आधार तैयार कर दिया । 1857 के वीरतापूर्ण तथा देशभक्तिपूर्ण विद्रोह ने तथा उसके पहले के अनेकों विद्रोहों ने भारतीय जनता के मन पर एक अमिट छाप छोड़ी । उन्होंने ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध की शानदार स्थानीय परंपराएं कायम कीं तथा आगे के स्वाधीनता संग्राम में भारतीय जनता के लिए प्रेरणा का एक अक्षुण्ण स्त्रोत प्रदान किए । इस विद्रोह के वीरों की गाथाएं जल्द ही घर-घर में गूंजने लगीं, भले ही उनके नामों के उच्चारण मात्र से शासक बौखलाते रहे हों ।

अभ्यास

1. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जन-असंतोष का विवेचन कीजिए । किस सीमा तक 1857 का जन-विद्रोह इस असंतोष का परिणाम था ?
2. 1857 की घटना के लिए परिस्थितियों पैदा करने में डलहौजी को किस सीमा तक जिम्मेदार माना जा सकता है ? इसका आकलन कीजिए ।
3. वे कौन से कारक थे जिनकी वजह से ब्रिटिश शासन के खिलाफ सिपाही विद्रोह भड़क उठा ? वे इस विद्रोह के प्रमुख आधार थे, इस कथन का विवेचन कीजिए ।
4. 1857 के विद्रोह में भारतीय राजाओं की भूमिका का विवेचन कीजिए । ब्रिटिश शासकों ने उनको किस प्रकार पुरस्कृत किया ?
5. पश्चिमी शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने इस विद्रोह से अपने को अलग क्यों रखा ? इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।
6. 1857 के विद्रोह के असफल होने के कारणों की समीक्षा कीजिए ।
7. 1857 की विरासत का विवेचन कीजिए ।
8. 1857 के दौरान हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच एकता के महत्व का विश्लेषण कीजिए ।
9. दिल्ली 1857 के जन-विद्रोह का प्रमुख केंद्र क्यों बना ?
10. निम्नांकित नेताओं की 1857 के विद्रोह के दौरान की भूमिका से संबंधित सामग्री एकत्र कीजिए और उन पर टिप्पणियां लिखिए :
    बहादुर शाह द्वितीय, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह, मौलवी अहमदुल्ला, तांत्या टोपे, खान बहादुर खान
11. ब्रिटेन के भारत विजय से लेकर 1856 तक ब्रिटिश विरोधी जितने भी विद्रोह हुए, उनकी एक सूची तैयार कीजिए । भारत का एक मानचित्र लेकर उसमें इनके स्थान तथा समय वर्ष अंकित करो ।
12. भारत के मानचित्र पर उन प्रमुख केंद्रों को प्रदर्शित करो, जहां-जहां विद्रोह हुआ था ।

Scanned with CamScanner